© 2016 IJSRSET | Volume 2 | Issue 5 | Print ISSN: 2395-1990 | Online ISSN : 2394-4099
Themed Section: Education

स्वतन्त्रता आन्दोलन में संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं का योगदान

डॉ बिभाष चन्द्र
प्रशिक्षित स्नातक शिक्षक,
केंद्रीय विद्यालय तमुलपुर, असम, भारत।

शोध आलेख सार :- बंगाल के गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिंग्स ने 1784 ई॰ बंगाल एशियाटिक सोसाइटी की स्थापना की। स्थापना के साथ ही हिन्दू बहुल राज्यों की भाषा संस्कृत को बनाया। जिससे अनेक संस्कृत कॉलेज की स्थापना हुई, जिससे संस्कृत के प्रति लोगों का झुकाव बढ़ा। 1857 ई॰ में प्रारम्भ प्रथम स्वतंत्रता आन्दोलन को गति देने के लिय सभी भाषाओँ के विद्वनों ने पत्र–पत्रिकाओं के माध्यम से युवकों को जोड़ने का प्रयास किया। जिसमें संस्कृत के विद्वनों ने काशी नगरी को अपना कार्य क्षेत्र बनाकर प्रमुख भूमिका निभायी। अंग्रेजों ने प्रेस कानून बनाकर सभी पत्र–पत्रिकाओं के प्रकाशन पर सेंसरशिप लगा दी। बाद में इसे रद्द कर दिया गया। संस्कृत के मूर्धन्य विद्वनों में यथा – अम्बिकादत्त व्यास, सदाशिव मोरेश्वर भिड़े, श्रीधर पाठक, महावीर प्रसाद द्विवेदी आदि ने अपनी रचनाओं के द्वारा राष्ट्रीय चेतना जागृत करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। अप्पाशास्त्री ने लेखों के माध्यम से तत्कालीन सरकार का विरोध किया। इस प्रकार संस्कृत पत्र–पत्रिका राष्ट्रवाद और राष्ट्रीय चेतना के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया।

मुख्य शब्द:- स्वतंत्रता, आन्दोलन, प्रकशन, जन–जागरण, राष्ट्रीय चेतना।

अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में अंग्रेज शासक वारेन हेस्टिंग्स बंगाल के गवर्नर जनरल ने वहाँ शिक्षा व्यवस्था को नये सिरे से व्यवस्थित करने का निश्चय किया। इस क्रम में उसने 1784 ई॰ में बंगाल एशियाटिक सोसाइटी की स्थापना की तथा साथ ही यह उद्घोषित किया कि हिन्दू–बहुल राज्य की भाषा संस्कृत होगी। वारेन हेस्टिंग्स ने भारतीयों के न्याय (धर्मशास्त्र) के व्यवस्था के लिए संस्कृत को उपयुक्त माना तथा सभी अंग्रेजी प्रशासकों के लिए संस्कृत का ज्ञान आवश्यक कर दिया। संस्कृत को अनेक शताब्दियों के बाद यह सम्मान मिला था। उसने धर्मशास्त्र पर विचार करने के लिए पण्डितों की एक कमेटी नियुक्त की थी जिसमें वाणेश्वर तथा सर्वोरु शर्मा प्रमुख थे। इन्हीं के प्रयास से विवादसरार्णव (हिन्दून्यायविधि) की रचना संभव हो सकी।

इस क्रम में भारत के अनेक हिस्सों में गवर्नमेंट संस्कृत कॉलेजों की स्थापना हुई, जहाँ के प्रध्यापकों की सेवा एवं वेतन आदि के संदर्भ सरकार की ओर से नित निर्धारण किया जाता था। संस्कृत शिक्षा के प्रति लोगों का बहुत झुकाव बढ़ा। उसके बाद के शासकों में भी संस्कृत शिक्षा के विस्तार में भी रुचि दिखाई।

अंग्रेजों के शासन काल में वैज्ञानिक विकास के साथ औद्योगिक क्रांति होने से भारत का सम्पर्क अन्य देशों के साथ ज्यादा बढ़ने लगा। इस संदर्भ में नयी–नयी किताबें प्रकाशित होने लगी जो प्रायः अंग्रेजी में ही होती थी। अतः अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार को आधुनिक युग में माना गया। भारतीय विद्वान दो दलों में बट गए। परम्परावादि विद्वान संस्कृत को ही राजभाषा मानने के पक्ष में थे तो दूसरी ओर आधुनिक विचारों सिद्धान्तों एवं आविष्कारों के प्रति आकृष्ट विद्वान अंग्रेजी शिक्षा को आवश्यक मानने लगें। उस समय प्रसिद्ध चिन्तक राजाराम मोहन राय ने आधुनिक युग में अंग्रेजी शिक्षा के प्रबल समर्थक बन गए और 1835 ई॰ में लार्ड मैकाले ने संस्कृत के स्थान पर अंग्रेजी को राजभाषा घोषित किया। इससे

संस्कृतज्ञों में बहुत क्षोभ था, परन्तु युग की मांग अंग्रेजी के पक्ष में थी। अतः संस्कृतज्ञों का विरोध प्रभावी नहीं हो सका। इसके बावजूद संस्कृत पाठशालों एवं कॉलेजों में संस्कृत की पढ़ाई पूर्ववत् चलती रही। लोगों का आकर्षण इसके प्रति बना रहा। संस्कृत के विद्वान एवं छात्र शास्त्रों के अध्ययन के साथ संस्कृत में लोक भाषा की तरह आपस में बातें करते थे और पत्र भी लिखते थे।

सुविचारित रूप में भारत को अंग्रेजों के चंगुल से मुक्त कराने के लिए 1857 ई॰ में स्वतंत्रता आन्दोलन आरम्भ हुआ। भारत के सभी भाषाओं के विद्वान स्वतंत्रता आन्दोलन को तिव्रतर करने के उद्देश्य से पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन द्वारा युवकों को इस संग्राम में अपना सर्वस्व अर्पित करने के लिए आवाह्न करने लगे। राष्ट्रवादी संस्कृत पण्डित भी इसमें पीछे नहीं रहे और इस उद्देश्य को लक्ष्य बनाकर संस्कृत पत्रिका प्रकाशित की जाने लगी।

प्राचीन काल से ही काशी नगरी विद्या का केन्द्र रही है। बड़े-बड़े मूर्धन्य विद्वानों ने काशी विश्वनाथ की इस नगरी को अपना कार्य क्षेत्र बनाया। अतः उपलब्ध प्रमाणों के अनुसार सर्वप्रथम 1866 ई॰ में यहाँ से काशीविद्यासुधानिधि का प्रकाशन शुरु हुआ। यह मासिक पत्र था तथा इसके प्रकाशक ई॰जे.लाजरुस थे। प्रकाशन स्थान राजकीय संस्कृत विद्यालय वाराणसी था।

ब्रिटिश उपनिवेशवादियों ने देश के भीतर राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन के विकास का जवाब दमनकारी कारवाईयों से दिया। नार्थब्रुक ने 1875 ई॰ में कहा कि भारतवर्ष में कत्लेआम होना चाहिए India Must be bled[1] | 1878 ई॰ में वाइसराय लिटन (1870ई॰-1880ई॰) ने इण्डियन आर्म्स एक्ट, के अंतर्गत भारतीयों को अपनी रक्षा करने के लिए आग्नेय अस्त्र रखना वर्जित कर दिया। उसी वर्ष अत्यंत कठोर प्रेस-कानून भी बना, जिसने भारतीय भाषाओं में सभी प्रकाशनों पर प्रारंभिक सेंसरशिप लागू कर दी। यह सचमुच दमनकारी स्वरूप का कानून था। लेकिन इन दमनात्मक उपायों से इष्ट परिणाम नहीं प्राप्त किये जा सके। फलस्वरूप ब्रिटेन में लिबरल पार्टी ने 1880 ई॰ में सत्तारूढ़ होने के बाद पूँजीवादी और जमींदार—मूल के भारतीय राष्ट्रवादियों के साथ मेलजोल करने का दिखावा आरंभ किया। नये वाइसराय रिपन (1880ई॰-1884ई॰) ने प्रेस कानून को रद्द कर दिया। 1880ई॰-81ई॰ में प्रसिद्ध संस्कृत विद्वान् लोमान्य तिलक ने अंग्रेजी साप्ताहिक मराठा तथा मराठी में केसरी को जन्म दिया और 1884ई॰ में संस्कृत साप्ताहिक विज्ञानचिन्तामणि का केरल (पट्टाम्बि) से प्रकाशन हुआ।

उन्नीसवीं शताब्दी के आठवें दशक तथा नौवें दशक के प्रारंभ में भारत में एक नया क्रांतिकारी संकट पैदा होने लग गया था। उपनिवेशवादियों को डर था कि कहीं संस्कृतज्ञ राष्ट्रवादियों के उग्रवादी पक्ष तथा जन-आंदोलन में आपस में सहयोग न स्थापित हो जाए। एक वरिष्ठ सरकारी अधिकारी ऐलन ह्यूम ने अपनी एक रिपोर्ट में लिखा था कि यदि शिक्षित वर्गों के प्रतिनिधि (अधिकतर संस्कृत के विद्वान्) जन-विद्रोह में परिवर्तित हो सकते हैं। इसी को ध्यान में रखते हुए बम्बई के एक संस्कृत विद्यालय में 28 दिसम्बर, 1885 ई॰ को राष्ट्रीय कांग्रेस का जन्म हुआ। इस कांग्रेस के साथ संस्कृत के विद्वान् जुड़ गए। आदित्यराम भट्टाचार्य (1847ई॰-1921ई॰) ने 1886 ई॰ में ऋजुव्याकरण की मात्र रचना नहीं की थी, अपितु अपने प्रिय शिष्य मदनमोहन मालवीय के साथ उसी वर्ष काँग्रेस के द्वितीय अधिवेशन में कलकत्ता भी गए थे। वहाँ उन्होनें सक्रिय प्रतिनिधित्व किया था[2]। इस दूसरे अधिवेशन (दादाभाई नौरोजी अध्यक्ष) में यह निश्चित हुआ था कि कांग्रेस केवल राजनैतिक

मसलों पर विचार करेगी। इस निर्णय से गवर्नर जनरल लार्ड डफरिन सशंकित हो उठे थे और उन्हीं के आदेशों से भारत में गुप्तचर विभाग का संगठन हुआ था।

राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना के बाद राष्ट्रीय आंदोलन के भीतर विभिन्न गुटों के बीच संघर्ष तेज हो गया। उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक के मध्य में तिलक पूना सार्वजनिक सभा के अधिकांश नेताओं का समर्थन पाने में सफल हो गए। इस समय वे देश के जनवादियों के मान्य नेता बन चुके थे। मराठा में उनके लेखों ने दूसरे प्रांतों में भी उग्रवादी राष्ट्रवाद के विकास पर बड़ा प्रभाव डाला। वे भारत के संस्कृतज्ञों के भी मान्य नेता थे[3]।

1895 ई॰ में तिलक ने गणेश पूजा और शिवाजी के सम्मान में जनसमारोह संगठित करना आरंभ कर दिया। ये समारोह शीघ्र ही राजनैतिक मंच बन गए। देश में राष्ट्रीयता की लहर फैल गयी।

उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक में संस्कृत-लेखकों और कवियों ने अपने साहित्य में नवभारत की इस राजनीतिक एवं सामाजिक भावनाओं की ओर जाती, तो कभी वर्तमान की दीनावस्था की ओर, तो कभी भविष्य की ओर आशा लगाए थी। संस्कृत भाषा के कवियों तथा लेखकों ने व्यापी राजनैतिक आंदोलन में प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से सहयोग दिया। पाश्चात्य शिक्षा के साथ भारतीय विद्या में अटूट आस्था रहने के कारण इस युग के लेखकों व कवियों में वैचारिक स्वतंत्रता का विकास हुआ, जो पिछले युग में दबी हुई थी। ये सभी भारत की स्वाधीनता की कामना करते थे। इस युग के साहित्य स्रष्टा विद्रोही, सुधारवादी तथा देशभक्त थे।

स्वर्णिम अतीत के गौरवमय चित्रों की सुंदर झाँकियाँ देश के जनमानस को उत्साहित करती है तथा देश को उन्नत और समृद्ध बनाने की प्रेरणा देती हैं। अतीत केवल वर्तमान के दुःख को भुलाने के लिए सुखद स्वप्न की भाँति चित्रित नहीं किया गया, वरन् भविष्य की प्रेरणा बनकर भी सक्षम उपस्थित होता है। देश- विदेश के वैज्ञानिक इतिहास के प्रति इस युग के लेखक सचेत थे तथा इन्होंने पहली बार सही मायनों में इतिहास लिखा था। इस प्रकार के इतिहास ग्रन्थों में राजांग्लमहोदयः प्रमुख है, जिसका प्रकाशन 1894 ई॰ में कुंभकोणम् से हुआ था। तंजोर निवासी रामस्वामी राजू ने महाकाव्य शैली में अंग्रेजों के भारत आगमन से लेकर ईश्वरचंद्र विद्यासागर तक का इतिहास उपनिबद्ध किया है। इसके पश्चात् द्वितीय महत्वपूर्ण ग्रन्थ इतिहासोपदेशकम् (पुणे 1897 ई॰) में सदाशिव मोरेश्वर भिड़े ने शिवाजी से लेकर बाजीराव द्वितीय तक का इतिहास लिखा है। तद्युगीन विद्योदय तथा संस्कृतचन्द्रिका में इतिहास विषयक विविध निबंध मिलते हैं। विद्योदय (जून 1900ई॰) में प्रकाशित अधोलिखित पंक्तियों में जहाँ एक ओर मध्ययुगीन पतनशील दरबारी संस्कृति पर कटाक्ष है, तो दूसरी अंग्रेजी साम्राज्य के खिलाफ एक नए युग की ललकार है, क्रांतिकारी चेतना है – **अद्य पंचशतानि वर्षाणि यावत् कठोरयवन–भारततंत्रामनुभवतां तेषां (भारतीयानां) आत्मानुरागः समूलन्छेदमापन्नः पापप्रवृत्तिश्च क्रमेण सुदृढ़बद्धमूला वृद्धिमुपगता।** इन पंक्तियों से जयचंद्र शर्मा का तुलनात्मक इतिहासबोध देखने को मिलता है। अनेक देशभक्तों के समान उनका देशप्रेम उच्च वर्गों तक सीमित न था। वे जिस प्रकार मध्ययुग की भौतिक यातना से पीड़ित हैं, उसी प्रकार ब्रिटिश साम्राज्यवाद् में जनता के घटते हुए मूल्यों से भी चिंतित हैं।

पण्डित अम्बिकादत्त व्यास (1858ई॰-1900ई॰) को संस्कृत में नवविधाओं को विकसित करने की चिंता थी। आधुनिक रीति के संस्कृत उपन्यासकारों में पहला महत्वपूर्ण नाम अम्बिकादत्त व्यास का है, जिन्होंने शिवराजविजय (1893ई॰) नाम से संस्कृत में एक विशेष प्रकार के कथा साहित्य को जन्म दिया। इस ग्रंथ में लेखक की राष्ट्रीय भावना, देशभक्ति, भारतीय संस्कृत में गाढ़ निष्ठा आदि व्यंजित हुई है ।

जन्मभूमि के प्रति प्रेम भी स्वाभाविक है। माता के समान[4] मातृभूमि-वन्दना भी प्रत्येक स्वाभिमानी देशप्रेमी में होती है। श्रीधर पाठक के गीतों में भारत माता की वन्दना स्पन्दित है। स्तवन की-सी तन्मयता के साथ यह बात भी है कि देश को उसका भौगोलिक एकता की पीठिका में देखा गया है।

भारतस्तवः में हम श्रीधर पाठक के देश-प्रेम का निरूपण और भी अधिक पाते हैं। इसकी शैली जयदेव के गीतगोविन्द और बंकिम के वन्दे मातरम् की गरिमा लिए हुए है

वन्दे भारत-देशमुदारम्

सुषमा सदन-सकल-सुख-सारम्

भाल-विशाल-हिमाचल–भ्राजम्

चरण-विराजित-अर्णवराजम्

तप-धृत-सहस-कोटि-करवालम्

दुःसह-दुराप–प्रताप -विशालम्।

संस्कृत साहित्य में युगों से प्रकृति का महत्व मानव से सम्बन्धित होने पर ही था। उसके स्वतंत्र अस्तित्व की कल्पना दुर्लभ रही है। आधुनिक काल के पूर्व संस्कृत साहित्य में प्रकृति उद्दीपन और अलंकार के रूप से प्रयुक्त होती रही है। पाश्चात्य साहित्य के प्रभाव से इस युग के संस्कृत-कवियों ने स्वतंत्र प्रकृति चित्रण किया। महावीर प्रसाद द्विवेदी के प्रभातवर्णनम्[5] में वह भिन्न रूप में है । श्रीमती सरोजमोहिनी देवी ने प्रावृट[6], क्षणप्रभा[7] तथा शरत्[8] के चित्र खींचे हैं। उनकी कविताओं में प्रकृति का सहज चित्र देखने को मिलता है। अन्नदाचरण तर्कचूडामणि के वनविहंग[9] में पराधीनता के बंधनों की प्रतीकात्मकता है । अप्पाशास्त्री के मल्लिकाकुसुमम्[10] में रसावर्जकता है। रामशास्त्री तैलंग (1860ई॰–1925ई॰) की कविताएँ सूक्तिसुधा के विभिन्न अंकों में प्रकाशित होती रही हैं, जिनमें अधिकांश का विषय ऋतु-वर्णन है।

इस युग में पहली बार राजनैतिक साहित्य की रचना की प्रक्रिया आयी और उससे युग चेतना को बनाए रखने में सहायता मिली। अप्पाशास्त्री ने इस युग को सँवारा है। उन्होंने अपने लेखों के माध्यम से सरकार की नीति और देश-विदेश में फैले हुए साम्राज्यवाद की पशुता को लोगों पर प्रकट कर दिया। दक्षिणी अफ्रीका में बोअर आदिवासियों के साथ उनका पक्षपात था[11] । अप्पाशास्त्री ही ऐसे थे, जिन्होंने प्रेस एक्ट के मुकाबले में डटकर देश में राजनैतिक चेतना फेलाई।

ये संस्कृतज्ञ यद्यपि विशाल आंदोलन के केन्द्र थे, लेकिन ये नेता की पोशाक पहनकर जनता के सामने उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम चरण में कभी नहीं आये। ये सरकार की अपराधी वृत्ति का निरंतर पर्दाफाश करते रहे और अन्याय से मुकाबला करने के लिए उन्हें उकसाते रहे । यहाँ अप्पाशास्त्री ने विद्रोह के बढ़ते हुए कारणों की वैज्ञानिक परीक्षा की है तथा देश की जनचेतना को जगाने का प्रयास किया है। नवयुग की क्रांति को ये तथाकथित दकियानूसी संस्कृत-समाज तक पहुँचा देना चाहते थे।

अपनी समाचारपत्रसम्पादकस्तवः[12] कविता में महावीरप्रसाद द्विवेदी ने भारत के आंचलिक तथा अंग्रेजी के समाचार-पत्रों को डरपोक तथा अंग्रेजों का गुलाम कहा था

"इहास्ति साधुत्वमतः परं किम्

प्रकाश्य लोकस्य विमाननां यत्।

स्थिते भये पाणियुगलं प्रसार्य

क्षमस्व सहेति च भाषसे त्वम् ।।

कम-से-कम यह आरोप अप्पाशास्त्री और संस्कृत के अन्य सम्पादकों पर तो नहीं लगाया जा सकता है। भारतीय स्वतंत्रता के इतिहास को लिखने में इसीलिए संस्कृत के समाचारों की भूमिका और भी अधिक बढ़ जाती है।

सन्दर्भ सूची:-

1. समुद्धरणीयमेव शोणितं भारतवर्षस्य, संस्कृतचंद्रिका 14.4-9, (पृष्ठ 34 से उद्धृत)
2. उपाध्याय 1983 : 127
3. तिलक के प्रभाव से संस्कृतज्ञों को दूर रखने के लिए ब्रिटिश सरकार ने 1887 ई॰ में विक्टोरिया की सुवर्ण जुबिली पर "महापहोपाध्याय" नाम से एक नवीन उपाधि प्रारंभ की थी, जिससे संस्कृतज्ञों को खरीदा जा सके और वे राष्ट्रीय आंदोलन से विमुख हो जाएँ।
4. अप्पाशास्त्री, मातृभक्तिः, संस्कृतचन्द्रिका 1894ई॰
5. संस्कृतचन्द्रिका, खण्ड 3, संख्या 12, 1894ई॰
6. संस्कृतचन्द्रिका, खण्ड 3, संख्या 5, 1895ई॰
7. संस्कृतचन्द्रिका, खण्ड-2, संख्या-5, 1894ई॰
8. संस्कृतचन्द्रिका, खण्ड-2, संख्या-7, 1894ई॰
9. संस्कृतचन्द्रिका, खण्ड-7, संख्या-5, 1897ई॰
10. संस्कृतचन्द्रिका, खण्ड-7, संख्या-1, 1900ई॰
11. अफ्रीकायुद्धे बोरसैनिकाः, संस्कृतचन्द्रिका, दिनांक 7 सितम्बर, 1899 ई॰
12. संस्कृतचन्द्रिका 7 जून, 1898 ई॰